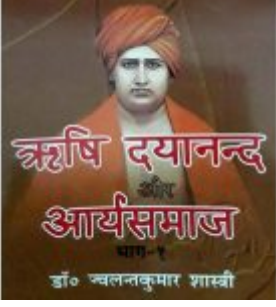


महर्षि दयानन्द की दृष्टि में धर्म क्या है ?



धर्म क्या है और अधर्म क्या है ? यह एक विवेच्य विषय है। नीतिवादों का विचार यह है कि भक्षण और रक्षण आदि चेतनमात्र में स्वभावतः है और पशु एवं मानव इन विषयों में समान है। परन्तु रक्षण का विषय एक ऐसी विशेषता है जो मानव में ही पायी जाती है। मानव रक्षण करने में अपनी विशेषता रखता है। धर्म का मानव से सीधा सम्बन्ध है अतः इसका भी लक्षण करना उसके लिए अनिवार्य था। विविध लक्षण धर्म हमारे शास्त्रों में पाये जाते हैं। जो अपने अपने दृष्टिकोणों में परिपूर्ण हैं। परन्तु जहां अन्य आचार्यों ने इस धर्म के विविध सुन्दर लक्षण किये हैं वहाँ महर्षि दयानन्द ने लक्षणों को स्वीकार करते हुए धर्म का सुधरा और निखरा हुआ स्वरूप रखा है। वे स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में लिखते हैं-

“जो पक्षपात रहित न्यायाचरण सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है, उसको धर्म और जो पक्षपात सहित, अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञा भंग वेद-विरुद्ध है उसको अधर्म मानता हूँ।”

इसके अतिरिक्त अपने ग्रन्थों में उन्होंने कई स्थलों पर ऐसी ही मिलती-जुलती बातें धर्म के सम्बन्ध में कही हैं। परन्तु यह उनका कथन उनके मन्तव्य में से उद्धृत किया जा रहा है। इसकी विशेषता पर कुछ विचार आगे की पंक्तियों में किया जाता है।

मानव धर्म शास्त्र के प्रवक्ता मनु ने प्रसंगत : धर्म के विषय में कई प्रकार से विचार प्रस्तुत किया है। वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मप्रियता को धर्म का चार लक्षण उन्होंने एक स्थल पर स्वीकार किया है। दूसरे स्थल पर उन्होंने धर्म के दश लक्षण स्वीकार किये हैं। यह भी कहा गया है कि धारण करने के कारण यह धर्म कहा जाता है और यह प्रजा का धारक है। महाभारत आदि ग्रन्थों में इसी प्रकार के अन्य लक्षण भी किये गए हैं। इन सभी लक्षणों में धर्म के लक्षण कहे गए हैं वा धर्म के कुछ आवश्यक तत्त्व बताये गये हैं- यह प्रश्न उठता है। विचार करने पर पता चलेगा कि इनमें लक्षण और लक्ष्य दोनों का वर्णन है। वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मा की प्रियता धर्म के परिचय के साधन हैं अतः लक्षण हैं। परन्तु धृति, क्षमा आदि १० धर्म के तत्त्व हैं- अतः ये धर्म के लक्षित तत्त्व हैं। जब मानव की प्रवृत्तिमात्र को कसौटी पर कसने का विचार उठेगा तब इन्हीं दो प्रकार की दृष्टियों पर कसा जा सकेगा।

वैशेषिक दर्शन के कर्त्ता ने पदार्थ धर्म की दृष्टि से धर्म का लक्षण किया है। धर्म आत्मा का गुण है और आत्मा एवं मन के स्व व्यापार का प्रशस्त प्रकार भी है। वैशेषिककार धर्म का लक्षण करते हुए कहते हैं कि जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो उसका नाम “धर्म” है। इस धर्म के ज्ञान के लिए वेद आवश्यक है और वेद ईश्वर का ज्ञान होने से प्रमाण नहीं, परम प्रमाण है। वैशेषिक के इस लक्षण में पदार्थ धर्म की जहां दृष्टि है वहां कर्त्तव्याकर्त्तव्य रूप व्यापार का भी सन्निवेश है। परन्तु इस धर्म के ज्ञान

के लिए वेद और ईश्वर दोनों की आवश्यकता है। तात्पर्य यह है कि धर्म आत्मा का गुण है जिस प्रकार रूप आदि अग्नि आदि के धर्म होने से गुण हैं। जब आत्मा इसे व्यापार में लाता है तब यह उसके और मन के सहयोग से सम्पन्न होता है। परन्तु आत्मा और मन का शरीरेन्द्रिय आदि से किया प्रत्येक व्यापार धर्म ही हो- ऐसा नहीं है। जो व्यापार वेद के अनुकूल और ईश्वर के नियम के अनुरूप होता है, वह धर्म है- तद्भिन्न धर्म नहीं।

मीमांसादर्शन में भी धर्म का लक्षण किया गया है। विधि और निषेध की प्रेरणा जिसमें पाई जावे वह धर्म है परन्तु मीमांसाकार ने इस धर्म की परीक्षा में वेद को परम प्रमाण माना है। उसका कारण यह भी प्रकट किया है कि वेद में सृष्टि के नियमों का प्रतिपादन जैसा किया गया है वे वस्तुतः संसार में उसी प्रकार से पाये जाते हैं और किसी प्रकार का वैतथ्य नहीं पाया जाता है। अतः वेद की धर्म के विषय में परम-प्रमाणता है। इसी प्रसंग में एक और भी तथ्य का उद्घाटन महर्षि जैमिनी ने किया है। वह यह है कि वेद के शब्दों के साथ उन्होंने सृष्टि के पदार्थों का औत्पत्तिक सम्बन्ध माना है। तात्पर्य यह है कि सृष्टि के पदार्थों की उत्पत्ति वेद शब्द पूर्वक है। व्यास इस सिद्धान्त के परमपोषक थे। वैशेषिकदर्शन में भी इसका मूल मिलता है। आचार्य जैमिनी के लक्षण में भी धर्म के साथ वेद का बहुत ही अटूट सम्बन्ध है।

वैशेषिकदर्शन पर उपस्कार लिखने वाले शंकर मिश्र ने धर्म को निवृत्ति लक्षण और विधि रूप माना है। सर्वदर्शन संग्रह कर्त्ता ने पुण्यात्मक प्रवृत्ति का नाम धर्म माना है। आचार्य जन धर्म को प्रत्यक्ष नहीं मानते। इसे अनुमानगम्य मानते हैं। इस प्रकार धर्म के विषय में विविध वर्णन मिलते हैं। परन्तु यह एक तथ्यभूत बात है कि वेद का और ईश्वर नियम का सम्बन्ध लगभग सभी में किसी न किसी रूप में पाया जाता है।

वेद के विरुद्ध न होना धर्म का लक्षण है परन्तु वेद का ज्ञान स्वयं ईश्वर की प्रेरणा का फल है। ईश्वर की आज्ञा वा ईश्वर का नियम सृष्टिगत नियम है। उससे भी धर्म की अविरोधता होनी चाहिए। वाक्, मन और शरीर से जो भी उत्तम प्रवृत्ति की जाती है वह धर्म है। सत्यभाषण, न्यायाचरण आदि इसी प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं। इन प्रवृत्तियों में न्याय्य वा अन्याय्य का निर्णय करना कठिन कार्य है। कौन-सी प्रवृत्ति वा कर्म न्याय्य है और कौन-सा अन्याय्य- इसका विचार करना सरल कार्य नहीं है। धृति, क्षमा आदि धर्म युक्त कर्म हैं- यह तो ठीक ही है- परन्तु ये धर्म और न्याय्य कर्म की कसौटी नहीं है। अतः ये लक्ष्य हैं, लक्षण नहीं। हां! जब ये किसी के द्वारा पालन किये हुए होकर दूसरों के पथ-प्रदर्शक बनते हैं तब ये सदाचार के अन्तर्गत होने से लक्षण की संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं। सत्यभाषण आदि से युक्त न्यायाचरण धर्म है परन्तु उसमें पक्षपात का अभाव होना चाहिए। पक्षपात एक प्रकार पूर्व निश्चित धारणा है। यह खोज और सत्यान्वेषण के मार्ग में बाधक है। पक्षपात न्याय का भी इसी प्रकार विरोधी है। जहाँ पक्षपात है वहाँ न्याय की सम्भावना नहीं हो सकती है।

अतः सत्यभाषणादि युक्त न्यायाचरण वह है जो पक्षपात से रहित होकर किया जावे। परन्तु फिर भी प्रश्न यह उठता है कि पक्षपात न होने पर भी न्याय और सत्य के निर्णय की कोई कसौटी बनानी ही पड़ेगी? इसी का समाधान करने के लिए कहा गया है कि ईश्वरीय नियम की अनुकूलता और वेदों की अविरोधता आवश्यक है। ये दोनों ऐसी कसौटी हैं कि जिनके आधार पर न्यायाचरण को कस कर परखा जा सकता है और न्याय्यपने और अन्याय्यपने का निर्णय किया जा सकता है। जिन आचार्यों ने वेद को

धर्म में परम प्रमाण माना है उनका भी आशय यही है। वे वेद को ईश्वर की आज्ञा व नियम मानकर ही ऐसा कह रहे हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वराज्ञा और वेद में अन्तर नहीं है।

परन्तु भगवान् दयानन्द ने धर्म के लक्षण में दोनों को पृथक्-पृथक् रखकर लक्षण को और भी निर्दुष्ट कर दिया है। वेद को धर्म में परम प्रमाण मानने के भी अर्थ दूसरे हो सकते हैं। कोई यह कह सकता है कि वेद से जो प्रतिपादित हो वही धर्म है। परन्तु महर्षि की बात इसको स्पष्ट कर देती है कि जो ईश्वरीय नियम के अनुकूल हो और वेद के अविरुद्ध हो। कोई ऐसा भी मसला उठ सकता है जो वेद में प्रत्यक्षतः प्रतिपादित न दिखाई पड़े। ऐसी स्थिति में यह देखा जावेगा कि वह वेद के विरुद्ध तो नहीं है। वेद के अविरुद्ध होने से वह धर्म कहा जा सकेगा।

महर्षि दयानन्द के द्वारा दिखलाया गया धर्म का लक्षण सर्वथा ही परिमाजित एवं पूर्ण है। इसमें सभी आचार्यों की दृष्टियाँ समाविष्ट हैं। महर्षि के धर्म मीमांसा का यही स्वरूप है। यहां पर संक्षेप में इसके ही सम्बन्ध में कुछ लिखा गया।

-जन-ज्ञान (मासिक) के फाल्गुन अंक वि० सं० २०२१ से साभार
लेखक- श्री आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

ऋषि दयानन्द और आर्य समाज -600 रूपए
2 खण्डों में 1200 पृष्ठ
प्राप्ति के लिए
Whatsapp करें +917015591564

प्रस्तुति- प्रियांशु सेठ